आर्थिक स्वतंत्रता: एक विस्मृत मानवाधिकार

पार्थ जे. शाह
अध्यक्ष, सेंटर फॉर सिविल सोसाइटी

जॉन टेम्पल्टन फाउंडेशन द्वारा सहयोग प्राप्त, पर पुस्तक में प्रस्तुत विचारों के लिए फाउंडेशन जिम्मेवार नहीं है।

आर्थिक स्वतंत्रताः एक विस्मृत मानवाधिकार

मानवाधिकारों को प्रोत्साहित करना समाज सुधारकों का एक महत्वपूर्ण काम है। मानवाधिकारों से व्यक्ति की स्वतंत्रता बढ़ती है और अपनी क्षमताओं के विकास के लिए जरूरी योग्यताएँ भी हासिल होती हैं। मोटे तौर पर तीन तरह की स्वतंत्रताओं की बात की जाती हैः राजनीतिक स्वतंत्रता, सामाजिक स्वतंत्रता और आर्थिक स्वतंत्रता। राजनीतिक स्वतंत्रता का आशय मत देने, अपने प्रतिनिधि का चुनाव करने और सामूहिक निर्णय लेने की प्रक्रिया में भाग लेने के अधिकार से है। सामाजिक स्वतंत्रता में अभिव्यक्ति और समाचार माध्यमों की स्वतंत्रता, संघ बनाने की स्वतंत्रता, किसी भी धर्म को मानने व न मानने की स्वतंत्रता शामिल है। ईमानदारी से जीवन यापन के लिए बिना किसी अनावश्यक दखल के उत्पादन और व्यापार करने की स्वतंत्रता ही आर्थिक स्वतंत्रता का सार है। इसके अंतर्गत आते हैं संपत्ति रखने, उसका उपयोग करने और बेचने का अधिकार, विवादों का समुचित तथा शीघ्र समाधान करने और अनुबंधों को लागू करने का अधिकार और जीवन तथा संपत्ति की संपूर्ण सुरक्षा, ताकि हर कोई सुरक्षित और शांतिपूर्ण ढंग से अपनी जीविका चला सके।

राजनीतिक और सामाजिक स्वतंत्रता को व्यापक तौर पर मान्यता मिल चुकी है, परन्तु आर्थिक स्वतंत्रता पर काफी कम विचार किया जाता है। मिसाल के तौर पर संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार उद्घोषणा में आर्थिक

सेंटर फॉर सिविल सोसाइटी श्रीमान सुबोध मिश्रा के अनुवादन और श्रीमान् संजय कुमार साहा के समीक्षन के लिए आभार प्रकट करती है।

स्वतंत्रता पर बहुत कम ध्यान दिया गया है। जबकि आर्थिक स्वतंत्रता अगर ज्यादा नहीं तो उतनी ही महत्वपूर्ण है, जितनी राजनीतिक और सामाजिक स्वतंत्रता। कई मामलों में, आर्थिक स्वतंत्रता के बिना अन्य स्वतंत्रताओं का कोई मतलब नहीं रह जाएगा। अगर एक ही राजनीतिक दल हो तो मत देने का अधिकार व्यर्थ है। अगर सभी प्रिंटिंग प्रेस, रेडियो और टेलीविजन केन्द्र सरकारी ही हों, तो अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार बेमानी है। ऐसे में आपको तभी तक बोलने की स्वतंत्रता होगी, जब तक सरकार को आपत्ति न हो। आर्थिक स्वतंत्रता और संपत्ति का अधिकार आपको अपने विचारों की अभिव्यक्ति के लिए अनेक साधन उपलब्ध कराएगा।

अधिकार, न कि हकदार

आर्थिक स्वतंत्रता और आर्थिक हकदारी में अन्तर है। बुनियादी रूप से दोनों एक–दूसरे के विपरीत हैं। सरकार और अंतर्राष्ट्रीय एजेंसियों द्वारा अनेक प्रकार के "आर्थिक अधिकारों" का आश्वासन दिया जाता है। इनमें प्रमुख हैंः शिक्षा, स्वास्थ्य उपचार, रोजगार और आवास के अधिकार। यहाँ समझने वाली बात यह है कि वस्तुओं और सेवाओं को बनाने अथवा प्राप्त करने की विधि के ऊपर अधिकार एक अलग बात है, जबकि मात्र वस्तु और सेवाओं पर अधिकार दूसरी बात है।

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार का सीधा अर्थ यही है कि हम बिना डर या किसी का पक्ष लिए खुद को अभिव्यक्त कर सकते हैं। इससे हमें मुक्त प्रिंटिंग प्रेस या प्रसारण के लिए मुक्त रेडियो अथवा टेलीविजन केन्द्र का अधिकार प्राप्त नहीं हो जाता है। न ही इससे हमें यह अधिकार प्राप्त होता है कि हम किसी और के प्रिंटिंग प्रेस या रेडियो स्टेशन को उपयोग में लाने के लिए सरकारी माध्यम का उपयोग करें। न ही यह जरूरी है कि सरकार सभी को छापाखाना और रेडियो स्टेशन उपलब्ध कराए। इसके लिए यही आवश्यक है कि कोई भी हमारे इस अधिकार के उपयोग में दखल न दे। इस अधिकार का उपयोग करने के लिए किसी के ऊपर किसी को साधन उपलब्ध कराने का दबाव नहीं हो। इसी तरह, शिक्षा के अधिकार का अर्थ यह होना चाहिए कि कोई भी हमें शिक्षा प्रदान करने और शिक्षा प्राप्त करने से नहीं रोक सकता है, न कि यह कि हमें शिक्षा देना किसी का काम है।

आइजेहा बर्लिन की शास्त्रीय विवेचना के अनुसार ये ''नकारात्मक'' अधिकार हैं ''सकारात्मक'' नहीं। ये हमें बताते हैं कि हमें किससे स्वतंत्रता है न कि किस चीज की। अगर मुझे किसी और के प्रिंटिंग प्रेस के उपयोग का अधिकार दिया गया, तो प्रिंटिंग प्रेस के मालिक के संपत्ति के अधिकार का उल्लंघन होता है। अतः उसके प्रिंटिग प्रेस के उपयोग का मेरा अधिकार उसके संपत्ति के अधिकार को छीने बिना उपयोग में नहीं लाया जा सकता। खुशी की खोज करने के अधिकार और खुश रहने के अधिकार के बीच बुनियादी फर्क है। इसी तरह आर्थिक स्वतंत्रता और आर्थिक हकदारी के बीच भी फर्क है।

शहरी गरीब और आर्थिक स्वतंत्रता

क्या आर्थिक स्वतंत्रता का महत्त्व सिर्फ अमीरों के लिए है? इसकी जरूरत उनके लिए ज्यादा है, जो समाज के सबसे ज्यादा निम्न आर्थिक वर्ग में गिने जाते हैं– एक गरीब फेरीवाले से बड़ा मुक्त उद्यम का हिमायती और कोई नहीं हो सकता। आर्थिक स्वतंत्रता के साथ विभिन्न लाइसेंसों और निरर्थक कानूनों को हटाना भी जुड़ा हुआ है, जिनके दायरे में लोग जीते हैं। स्वतंत्रता के अभाव और अत्यधिक नियंत्रण से गरीब लोग ही सबसे ज्यादा कुप्रभावित होंगे। अमीर लोग तो सरकारी नियंत्रण होने के बावजूद अपना रास्ता निकाल ही लेते हैं, जबकि गरीबों के पास कोई और चारा नहीं है।

इसका एक उदाहरण, भारत के विभिन्न शहरों और नगरों में रिक्शा चालकों और फेरी वालों पर लगाये गए नियंत्रक कानून हैं। दिल्ली में करीब पाँच लाख साइकिल–रिक्शा हैं, जो गरीबों को सस्ती और सुलभ परिवहन सेवा पहुँचाते हैं। दिल्ली नगर निगम के आदेशानुसार रिक्शा के लिए लाइसेंस अनिवार्य है और सिर्फ 99,000 लाइसेंस ही दिए जा सकते हैं। इस एक कानून से 80 प्रतिशत रिक्शों को अवैध बना दिया गया है। इस सरकार निर्मित अवैधता के चलते चालकों को निरंतर यातना और लूट–खसोट का शिकार होना पड़ता है। एक अध्ययन के अनुसार एक रिक्शा चालक प्रतिमाह औसतन 200 रुपये रिश्वत का भुगतान करता है। चूँकि लाइसेंसी रिक्शों को भी भुगतान करना होता है, अतः नगर निगम और पुलिस अधिकारियों द्वारा ऐंठी गई कुल राशि प्रतिमाह 10 करोड़ रुपये तक हो जाती है। यह लाइसेंस–परमिट राज की आर्थिक गुलामी का बोझ है, जो दिल्ली के सबसे गरीब लोगों को झेलना पड़ता है।

दिल्ली नगर निगम अधिनियम, 1957 की धारा 481 के तहत साइकिल रिक्शा उपकानून, 1960 के अनुच्छेद 3(1) के अनुसार रिक्शा का मालिक और चालक एक ही व्यक्ति होना चाहिए। इस कानून को एक अच्छी सोच से तैयार किया गया है, ताकि बिचौलियों और ठेकेदारों द्वारा रिक्शा चालकों के शोषण पर अंकुश लगे। परन्तु इस कानून का वास्तविक प्रभाव अपने लक्ष्य के विपरीत है। आप कई टैक्सी, आटो–रिक्शा या बसें तो रख सकते हैं, लेकिन साइकिल रिक्शा नहीं, जो कि यातायात का सबसे सस्ता साधन है। कानूनन एक व्यक्ति सिर्फ एक ही साइकिल–रिक्शा रख सकता हैः यानी, साईकिल–रिक्शा के धंधे में विस्तार की कोई संभावना नहीं है। सिर्फ एक काम जो इन चालकों को आता है, उसे भी वे फैला नहीं सकते हैं।

वे हमेशा के लिए बस एक रिक्शा के सहारे अपनी जीविका चलाने को मजबूर हैं। क्या यही तरीका है एक गरीब को गरीबी से मुक्ति दिलाने का?

और तो और, अगर मालिक अपना रिक्शा चलाने में असमर्थ हुआ, बीमार हो गया या अपने घरवालों से मिलने के लिए वापस अपने घर चला गया, तो ऐसे में उसके घर का कोई और सदस्य रिक्शा नहीं चला सकेगा। वह रिक्शा यूँ ही पड़ा रहेगा। इससे भला किसको फायदा हो सकता है?

एक ओर सरकार रोजगार सृजन की योजनाओं पर करोड़ों रुपये बहाती है, वहीं दूसरी ओर रोजी–रोटी कमाने के रास्ते में नियंत्रण का रोड़ा अटकाती है। सरकार को सभी नियमों और नियंत्रक कानूनों पर जीविका स्वतंत्रता जाँच लागू करके सर्वप्रथम इन बाधाओं को दूर करना चाहिए। नागरिकों को ईमानदारी पूर्वक कमाने से रोकने वाले कानूनों के मामलों में, 'फिर से सोचने, सुधारने या हटाने' का फार्मूला अपनाया जाना चाहिए।

लाईसेंसिंग व्यवस्था के कारण रिक्शा–चालकों को रिश्वत तो देना पड़ता ही है, साथ ही एक निश्चित समयावधि में प्रशासन द्वारा उनके रिक्शे जब्त भी कर लिए जाते हैं। एक बार अगर रिक्शा जब्त कर लिया गया, तो इसे छुड़ाने में 5–15 दिन तक लग जाते हैं और साथ में काफी रिश्वत भी देना पड़ता है। इस अवधि में रिक्शा चालक की रोजी–रोटी मारी जाती है। लाईसेंस की इन्हीं समस्याओं और अनिश्चितताओं के कारण चालक रिक्शा खरीदने के बजाय किराए पर चलाना ज्यादा पसंद करते हैं। दिल्ली में 90 प्रतिशत से भी ज्यादा रिक्शे किराए पर चलाए जाते हैं। रिक्शा चालक अपने रिक्शों का मालिक बने – इसी मंशा से यह कानून बनाया गया है – इसके बावजूद शायद ही कोई रिक्शा चालक अपना रिक्शा रखना चाहता है। इस कानून का ध्येय इस धंधे से बिचौलियों को हटाना था, जबकि हकीकत में रिक्शा बाजार में सिर्फ बिचौलिए ही मौजूद हैं।

इसके वास्तविक परिणाम कानून की मंशा के ठीक विपरीत निकले। आर्थिक नियंत्रण के मामले में कानून की मंशा और वास्तविक परिणामों

में अंतर्विरोध होना इतना आम है कि इसके लिए कानूनी प्रावधान तक कर दिया गया हैः 'उलटे परिणामों का कानून' (लॉ ऑफ अनइंटेंडेड कंसिक्वेंसेज)।

क्यों न रिक्शों को भी लाइसेंस राज से मुक्त कर दिया जाय, जैसा हमने सन् 1991 में उद्योग के लिए किया था? भारी नुकसान होने के बावजूद कइयों का कहना है कि रिक्शा से पूरे शहर का रास्ता जाम हो जाता है, वे रिक्शों की संख्या में अंधाधुंध बढ़त की इजाजत नहीं देंगे। लेकिन दिल्ली में सिर्फ 5 लाख रिक्शे क्यों हैं? न कि 4 या 6 लाख? क्योंकि बाजार में 5 लाख रिक्शों की मांग है। इसका सीधा संबंध मांग और पूर्ति से है। लाईसेंसी रिक्शों की अधिकतम संख्या 90,000 रखी गई है, परन्तु इसका रिक्शों की वास्तविक संख्या पर कितना प्रभाव पड़ा है? अगर अधिकतम सीमा 70,000 या 1.5 लाख कर दी जाए, तो ऐसे में कितने रिक्शे वास्तव में सड़क पर होंगे? करीब 5 लाख! सरकार भले ही कोई निर्णय ले, लोगों को वे चीजें प्राप्त हो ही जाती हैं, जो वे चाहते हैं – यानी, 5 लाख रिक्शा। बाजार को लोग चलाते हैं, न कि सरकार।

लाइसेंस नीति शहर के रिक्शों की संख्या सीमित नहीं कर सकती। यह सड़क जाम से मुक्ति दिलाने में असफल रही है। हाँ, इससे एक मकसद जरूर पूरा होता है, शायद यही एकमात्र मकसदः यह रिक्शा व्यवसाय को अवैध बनाता है और शोषण तथा उत्पीड़न को बढ़ावा देता है। क्या हमें इस अमानवीय व्यवस्था को समाप्त नहीं कर देना चाहिए? सरकार जायज आर्थिक गतिविधियों पर नियंत्रण रखती है और इसीलिए आर्थिक स्वतंत्रता के अभाव की मार अमीरों से ज्यादा गरीबों को झेलनी पड़ती है। (यही तर्क फेरीवालों, छोटे दुकानदारों, वेश्याओं और गरीबों के उन सभी व्यवसायों पर लागू होता है, जिन पर सरकार का नियंत्रण है।)

इससे पहले कि हम ग्रामीण गरीबों की स्थिति पर चिंतन करें, इस बहस से यह भी समझने का मौका मिलता है कि क्यों 1991 के उदारीकरण के बाद अमीर तो और अमीर होते गए, लेकिन गरीब जस के तस बने

रहे। उद्योग से लाइसेंस–परमिट राज हटाकर और अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का द्वार खोलकर उन क्षेत्रों में उदारीकरण की नीति लागू की गयी, जिससे अमीरों की आजीविका चलती है। परन्तु न्यूनतम पूँजी लगाकर शुरू किये जा सकने वाले व्यवसाय यानी, गरीबों के व्यवसायों में अभी तक उदारीकरण लागू नहीं किया गया है। ये अभी भी लाइसेंस–परमिट राज के क्रूर शिकंजे में जीने को मजबूर हैं। इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं कि सन् 1991 के बाद अमीर लोग ज्यादा कमाने में सक्षम हुए हैं, लेकिन गरीब लोग नहीं। गरीब लोग मौजूदा उदारीकरण को लेकर उत्साहित नहीं हैं, इसलिए नहीं कि वे इससे गरीब हो रहे हैं, बल्कि इसलिए कि उन्होंने अपने व्यवसायों में अब तक उदारीकरण का स्वाद नहीं चखा है। हमें उनके लिए भी वही काम करना चाहिए, जो हमने अमीरों के लिए किया हैः यानी, उन्हें भी आर्थिक स्वतंत्रता दी जाए।

ग्रामीण गरीब और प्राकृतिक संसाधनों में संपत्ति का अधिकार

ग्रामीण भारत में जल और जंगल दो सबसे ज्यादा मूल्यवान संसाधन हैं। लेकिन ये संसाधन इन इलाकों में रहने वाले लोगों के हाथ में नहीं हैं। ये राज्य के हाथ में हैं और राज्य ही इनका प्रबंध करता है। जल और जंगल ग्रामीण समुदायों की बजाय देश की संपत्ति है। ये राष्ट्रीयकृत संसाधन हैं। इस राष्ट्रीयकरण ने ग्रामीणों को उनके बहुमूल्य आर्थिक संसाधन से वंचित कर दिया है। यह एक ऐतिहासिक अन्याय है।

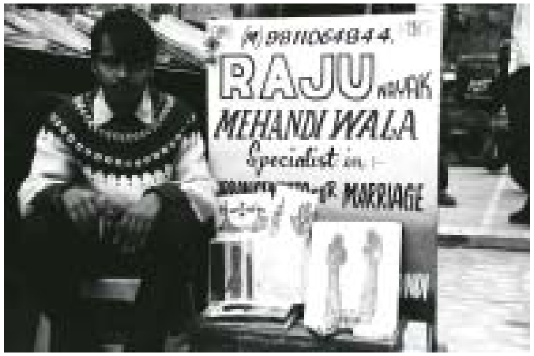

शहरी जमीन भी कभी जंगल से ढकी हुई थी।

जंगलों को काट कर इस जमीन को कृषि, आवासीय या व्यापारिक उपयोग में लाया गया। जिन्होंने जंगलों को काट दिया, उन्हें नई जमीन पर संपत्ति का अधिकार दे दिया गया। शहरी जमीन कमोबेश पूर्णतः निजी आर्थिक संसाधन के रूप में तब्दील हो चुकी है।

लेकिन कुछ लोगों ने अपने पेशे और उपयोग में आने वाले क्षेत्र के जंगलों को नहीं काटा और उन्हें जंगल ही बने रहने दिया। अंग्रेजी शासकों ने लकड़ियों की मांग पूरी करने के लिए इनमें से ज्यादातर जंगलों का राष्ट्रीयकरण कर दिया। आजादी मिलने के बाद इसी नीति को जारी रखा गया। जमीन के स्वामित्व की प्रक्रिया, जिसका शहरी इलाकों में अनुपालन किया गया है, उसे वनवासियों को देने से इनकार किया जा रहा है। जिन वनवासियों ने जंगलों को ज्यौं का त्यौं रखा, अब उन्हें जंगल न काटने की सजा मिल रही है। वे जंगलों का रखरखाव करते हैं, लेकिन अब उनका इनपर कोई अधिकार नहीं। यही नहीं, बल्कि उन्हें अतिक्रमणकारी की उपाधि तक दे दी गयी है। न्याय तो इसी में है कि जंगलों और उसके आस पास रहने वालों को इन जंगलों पर संपत्ति का अधिकार दिया जाए।

यही तर्क जल संसाधनों पर भी लागू होता है। जो लोग इनका पारंपरिक तौर पर उपयोग अैर प्रबंध करते रहे हैं और जो लोग इन जल स्त्रोतों के इर्द–गिर्द रह रहे हैं, उनका इन संसाधनों पर मालिकाना हक होना चाहिए। ये स्थानीय समुदाय हमारे जंगलों और जल संसाधनों के सबसे अच्छे रक्षक होंगे। जैसा कि जिम्बाब्वे के कैम्प फायर प्रोग्राम, नेपाल में सामुदायिक वानिकी और कुछ हद तक भारत के संयुक्त वन प्रबंधन से साफ है कि वे समुदाय, जिनका दीर्घकालिक आर्थिक हित होता है, वे इन तथाकथित वन रक्षकों – राज्य की कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका में बैठे सरकारी नुमाइंदे – से ज्यादा अच्छा काम करते हैं।

सामुदायिक मिलकीयत और प्रबंधन से दो समस्याएं एक साथ हल हो जाती हैः वन और जल संसाधनों की सुरक्षा और देश के निर्धनतम समुदायों के जीवनयापन की सम्मानजनक व्यवस्था। वे जल और जंगल

की प्राकृतिक पूंजी से ही अपने भविष्य का निर्माण कर लेंगे। सबसे अच्छा और उचित समाधान तो यही है कि सभी जल संसाधनों और जंगलों को राज्य के हाथ से निकाल कर स्थानीय समुदायों के हाथों में सौंप दिया जाए।

गौरतलब है कि जंगलों और वन्य जीवों की सुरक्षा की बात सबसे पहले शहरी शिक्षित वर्ग द्वारा उठाई गई है, परन्तु इसकी सुरक्षा का खामियाजा वनवासियों को उठाना पड़ रहा है, क्योंकि उन्हें उन क्षेत्रों से बाहर निकलने को मजबूर किया जा रहा है, जिन्हें राष्ट्रीय उद्यान या अभयारण्य घोषित किया गया है। उनके विस्थापन को शायद ही कभी उजागर किया जाता है। कितनी बार आपने किसी गैर–सरकारी संगठन या नामी हस्तियों को इन वनवासियों को बेदखल करने के विरूद्ध खड़े होते देखा है? या बेदखल करने से पहले कम से कम स्थानांतरण और पुनर्वास सुनिश्चित करने का मुद्दा उठाते पाया है? पर्यावरण सुरक्षा के विस्थापितों को कभी समुचित सहानुभूति और मदद नहीं मिली। विकास से होने वाले विस्थापन की बात करने वाले तो अनेक मिल जाएंगे। यह ठीक है, परन्तु पर्यावरण सुरक्षा से पैदा होने वाले विस्थापितों के साथ ऐसा भेद–भाव क्यों? यह तो सीधे–सीधे ढोंग है, जो पर्यावरण संबंधी परियोजनाओं से प्रभावित ग्रामीण लोगों के जायज अधिकार की उपेक्षा करता है।

यहाँ प्रस्तावित सामुदायिक मिलकीयत का दृष्टिकोण निजीकरण की उस अवधारणा से काफी भिन्न है, जिसमें सबसे ऊँची बोली लगाने वाले को जंगल और नदियाँ नीलाम कर दी जाती हैं। अभी हाल ही में छत्तीसगढ़ सरकार ने एक नदी का कई किलोमीटर लंबा हिस्सा एक निजी कंपनी को लीज पर दे दिया। जिसने इस नदी के किनारे बसे लोगों को बगैर अनुमति अथवा मूल्य का भुगतान किए बिना नदी के पानी का उपभोग करने से रोक दिया। इस लीज की मान्यता है कि यह नदी सरकार की है, जिसे वह किसी को भी बेच सकती है। जबकि हकीकत में यह नदी इसके तट पर बसे लोगों और पारंपरिक तौर पर इसके पानी का उपयोग

करने वाले लोगों की है। इसे इन्हीं लोगों को वापस लौटाया जाना चाहिए, न कि किसी निजी पार्टी को।

अगर ग्रामीण गरीबों के संपत्ति के अधिकार और आर्थिक स्वतंत्रता को पूरी तरह से मान्यता दी जाय, तो वे सरकार या अंतर्राष्ट्रीय अनुदान एजेंसियों से कोई दान लिए बैगर अपना भला कर लेंगे। तभी वे सम्मान और समृद्धि के साथ अपना जीवन जीने में सक्षम हो सकते हैं।

आर्थिक स्वतंत्रता और समाज कल्याण

खाली पेट व्यक्ति के लिए आर्थिक स्वतंत्रता का क्या मतलब है? इस वाक्य को बार बार आर्थिक स्वतंत्रता की बात होने पर दुहराया जाता है। जबकि साईकिल–रिक्शा चालकों और वनवासियों के उपर्युक्त उदाहरणों से साफ है कि ईमानदारी और सम्मान के साथ जीने के लिए आर्थिक स्वतंत्रता काफी जरूरी है। आर्थिक स्वतंत्रता और सुसंरक्षित संपत्ति के अधिकार से उन लोगों को भी फायदा होता है, जिनके पास कोई संपत्ति नहीं है। स्वतंत्रता की प्रकृति ही ऐसी है कि भले ही मैं इसका उपयोग न करूँ, तो भी अन्य लोगों द्वारा इसके उपयोग से हमें भी इसका लाभ पहुँचता है। हो सकता है कि एक गरीब अशिक्षित व्यक्ति अपनी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का उपयोग न करे, परन्तु अगर समाज के दूसरे लोगों के पास वह स्वतंत्रता है, तो इसी से उन्हें काफी लाभ मिल जाता है।

आर्थिक स्वतंत्रता के अभाव में सार्वभौमिक शिक्षा और स्वास्थ्य सुविधा जैसे सामाजिक लक्ष्यों को पूरा करने में भी बाधा उत्पन्न होती है। दिल्ली शिक्षा अधिनियम, 1973 के अनुसार नया स्कूल खोलने अथवा पुराने स्कूल का विस्तार करने के लिए भी शिक्षा अधिकारियों से 'एसेंसियल प्रमाणपत्र' जो एक तरह का लाइसेंस ही है, प्राप्त करना जरूरी है। लाइसेंस–परमिट राज, जिससे सन् 1991 तक भारत के उद्योग पर शासन किया गया, वह अभी शिक्षा क्षेत्र में लागू है। स्कूलों की भारी कमी, शिक्षा का निम्न स्तर, और फीस तथा अनुदान की ऊँची दर शिक्षा में लाइसेंस–परमिट राज का स्वाभाविक परिणाम है। सन् 1991 से पहले, टेलिफोन और स्कूटर पाने के लिए लोगों को बरसों इंतजार करना पड़ता था। यह एक अभावग्रस्त अर्थव्यवस्था थी। लंबी कतार और रद्दी माल। आज की शिक्षा व्यवस्था भी एक अभावग्रस्त व्यवस्था है। शिक्षा जगत की समस्याओं के समाधान के लिए भी आर्थिक स्वतंत्रता उतनी ही जरूरी है, जितनी औद्योगिक जगत में व्यापक प्रसार और कम कीमत में गुणवत्ता में निरंतर सुधार के लिए जरूरी है।

आर्थिक स्वतंत्रता की माप

राजनीतिक और सामाजिक स्वतंत्रता के मूल्यांकन में फ्रीडम हाऊस की सफलता के बाद से देश में आर्थिक स्वतंत्रता के स्तर का आंकलन करने के कई प्रयास किए गए। न्यूयॉर्क का फ्रीडम हाउस, वाशिंगटन, डी. सी. का हेरिटेज फाउंडेशन और वेंकुवर स्थित फ्रेजर इंस्टीट्यूट, इन तीनों ने आर्थिक स्वतंत्रता को मापने के लिए तालिकाओं का विकास किया है। 'सेंटर फॉर सिविल सोसाइटी' फ्रेजर इंस्टीट्यूट के 'इकोनोमिक फ्रीडम ऑफ द वर्ल्ड' (विश्व की आर्थिक स्वतंत्रता) का सह प्रकाशक है। इसलिए मैं इसके बारे में अच्छी तरह जानता हूँ।

फ्रेजर की आर्थिक स्वतंत्रता तालिका में सात अलग अलग क्षेत्रों को शामिल किया गया है। ये हैंः सरकार कितनी बड़ी है; यह सरकारी उद्यमों, मूल्य में नियंत्रण और कर की ऊँची दर, के द्वारा अर्थव्यवस्था में कितना हस्तक्षेप करती है; मुद्रा स्फीती की दर तथा मौद्रिक नीति; जीवन और संपत्ति की सुरक्षा करने में देश की कानूनी संस्थानों की क्षमता; न्यायपालिका की स्वतंत्रता; घरेलू और अंतर्राष्ट्रीय व्यापार करने की स्वतंत्रता; और वैकल्पिक मुद्राओं में बैंक एकाउंट रखने व उपयोग करने की स्वतंत्रता। आर्थिक स्वतंत्रता तालिका के घटकों और गणना की विस्तृत जानकारी www.freetheworld.com से ली जा सकती है।

1997 में पाँच सार्क देशों की फ्रेजर इंडेक्स रेटिंग (इसमें भूटान और मालदीव की रेटिंग नहीं हुई) तथा उनकी अंतर्राष्ट्रीय रैंकिंग इस प्रकार

है (ऊँची रेटिंग अधिक आर्थिक स्वतंत्रता की द्योतक है)।

घटक	बांग्लादेश	भारत	नेपाल	पाकिस्तान	श्रीलंका
I	9.9	8.0	9.0	8.3	8.7
II	2.0	3.5	2.9	4.6	5.3
III	9.0	8.7	8.7	8.4	8.9
IV	3.2	7.0	2.8	4.5	4.9
V	6.9	7.6	–	7.0	7.6
VI	–	4.1	6.6	5.0	5.8
VII	3.5	3.8	3.8	3.2	6.0
समरी रेटिंग	5.3	5.8	5.3	5.6	6.5
रैंकिंग (123 देशों में)*	94	86	94	88	66

* कम रैंकिंग संख्या अधिक आर्थिक स्वतंत्रता की द्योतक है।

श्रीलंका (123 देशों में 66वाँ स्थान) में आर्थिक स्वतंत्रता सभी सार्क देशों में सबसे ज्यादा है, जबकि नेपाल और बांग्लादेश में सबसे कम (दोनों ही 94वें नबंर पर आते हैं)।

आर्थिक स्वतंत्रता और जीवन की गुणवत्ता

एक महत्वपूर्ण सवालः क्या आर्थिक स्वतंत्रता से सचमुच लोगों के जीवन स्तर में कोई सुधार आता है? श्रीलंका में आर्थिक स्वतंत्रता ज्यादा है। यहां आर्थिक और सामाजिक माहौल भी अन्य दक्षिण एशियाई देशों की तुलना में बेहतर है। फ्रेजर तालिका में आर्थिक मायने में ज्यादा मुक्त देशों और कम मुक्त देशों की आर्थिक और समाजिक परिस्थितियों में आश्चर्यजनक अन्तर देखने को मिलता है। 24 सबसे ज्यादा मुक्त देशों (शीर्ष के 20%) के लोग 24 सबसे कम मुक्त देशों (नीचे से 20%) के लोगों की तुलना में 20 साल ज्यादा जीते हैं। 1997 में सबसे ऊपर के 20% देशों में प्रतिव्यक्ति औसत आय 18,000 डॉलर थी, जबकि नीचे के 20 प्रतिशत देशों में यही आय 2,000 डॉलर से भी कम थी। यही नहीं, 90 के दशक में आर्थिक

रूप से सबसे कम मुक्त देशों के सकल घरेलू उत्पाद में नकारात्मक वास्तविक विकास देखने को मिला – उनकी अर्थव्यवस्था सिकुड़ गयी।

सबसे ऊपर 20% देशों का संयुक्त राष्ट्र मानव विकास सूचकांक 0.9 है, वहीं नीचे के 20% देशों का सूचकांक 0.45 से भी कम है। और आगे बढ़कर बात की जाए तो सबसे ऊपर के 20% देशों में प्रौढ़ निरक्षरता और गरीबी की दर काफी कम है, श्रम की उत्पादकता काफी ज्यादा है और शुद्ध पेयजल ज्यादा लोगों को उपलब्ध है।

पुरानी धारणा के अनुसार अमीर देशों में काफी आर्थिक असमानता होती है। इसकी जाँच का एक आसान तरीका यह है कि हम देश के औसत परिवार के जीवन–शैली की तुलना ''पहले परिवार'' यानी राष्ट्रपति या प्रधानमंत्री के परिवार से करें। उन देशों में इनके जीवन–शैली का अंतर बहुत कम है, जो आर्थिक मायने में ज्यादा स्वतंत्र हैं, जैसे जर्मनी, संयुक्त राज्य अमरीका या स्विटजरलैंड, जबकि उत्तरी कोरिया, बर्मा, क्यूबा या ईरान जैसे कम मुक्त देशों में यह अंतर काफी ज्यादा है। जर्मनी के चांसलर के रोजमर्रा का भोजन कमोबेश जर्मनी के औसत परिवार के जैसा ही है, जबकि निःसंदेह बर्मा या उत्तरी कोरिया में इसमें काफी अंतर होता है।

आर्थिक स्वतंत्रता का पैमाना विकसित करने से सामाजिक वैज्ञानिकों को आर्थिक और समाजिक विकास में इसके महत्व का आँकलन करने का मौका मिला है। अब लेखों या अन्य प्रकार के साहित्य द्वारा एडम स्मिथ के विचार को स्वीकार किया जाने लगा है कि विकास की ऊँची दर हासिल करने में आर्थिक स्वतंत्रता का काफी महत्व है। साथ ही सरकार की कानूनी और नियंत्रक व्यवस्था में थोड़ा ही परिवर्तन कर देने से आर्थिक स्वतंत्रता बढ़ सकती है। बुनियादी ढांचे, स्कूलों और अस्पतालों के विपरीत आर्थिक स्वतंत्रता बिना अधिक पूंजी और नई प्रौद्योगिकी लगाए बढ़ाई जा सकती है। यह लोगों के जीवन स्तर में सुधार लाने का सबसे आसान तरीका है।

मानवीय गरिमा की रक्षा करने और एक अच्छा समाज बनाने के लिए आर्थिक स्वतंत्रता उतनी ही महत्वपूर्ण है, जितनी राजनीतिक और सामाजिक स्वतंत्रता। आर्थिक स्वतंत्रता अर्थात् उत्पादन और व्यापार की स्वतंत्रता को मानव के मौलिक अधिकारों में अनिवार्य रूप से शामिल किया जाना चाहिए।

सेंटर फॉर सिविल सोसाइटी : एक नजर में

सेंटर फॉर सिविल सोसाइटी एक स्वतंत्र, अलाभकारी शोध एवं शैक्षिक संगठन है, जो नागरिक समाज में नव शक्ति का संचार कर करोड़ो भारतवासियों का जीवन स्तर उन्नत करने की दिशा में प्रयत्नशील है। भारत के लोग दुनिया में किसी भी देश के लोगों की तुलना में समान रुप से मेहनती और बुद्धिमान हैं। फिर दूसरों की तुलना में गरीब क्यों हैं? यही प्रश्न हमें इस दिशा में कार्य करने को प्रेरित करता है। लेकिन हम प्राथमिक विद्यालय, चिकित्सा केंद्र अथवा साफ–सफाई के कार्यक्रम नहीं चलाते हैं। हम शोध, संगोष्ठी और प्रकाशन के माध्यम से लोगों के विचारों, मतों और सोचने के तौर–तरीकों को बदलने का प्रयास करते हैं। हम सीमित सरकार, कानून का शासन, मुक्त व्यापार और प्रतियोगिता से परिपूर्ण बाजार के प्रबल समर्थक हैं।

हम एक सरकार की जगह हर व्यक्ति के विवेक पर भरोसा करते हैं। हम एक ऐसा समाज बनाना चाहते हैं, जहाँ राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक हर प्रकार की स्वतंत्रता हो। हम दूसरे स्वतंत्रता संग्राम के योद्धा हैं।

सेंटर फॉर सिविल सोसाइटी 'कानून, स्वतंत्रता और जीविका'; 'समुदाय, बाजार और पर्यावरण'; 'सुशासन'; 'सब के लिए शिक्षा'; 'कानून का शासन'; तथा 'विश्व और मैं' से संबंधित विषयों पर शोध करती है तथा सम्यक विचारधारा का निर्माण करती है।

कृपया हमारे शिक्षा अभियान (अनुदान विद्यार्थियों को दें, विद्यालयों को नहीं) तथा जीविका स्वतंत्रता अभियान में सहयोग दें। www.ccsindia.org

कार्यकारिणी

विद्वत समिति

इशर जज आहलूवालिया
स्वामीनाथन अइयर
जगदीश भगवती
सुरजीत एस भल्ला
महेश पी भट्ट
बिबेक देब्रॉय
मेघनाद देसाई
श्रीकांत गुप्ता
दीपक लाल
किरित पारिख
आइ जी पटेल
उर्जित पटेल
सुब्रोतो रॉय
अजय शाह
निर्विकार सिंह
सुरेश डी तेंदुलकर
किरण वाधवा
लीलंड बी येगर

सलाहकार समिति

विनय भरत राम
जॉह्न ब्लंडेल
राज बोधरा
टी एच चौधरी
आइरिस मदेरा
निताई मेहता
सुधीर मुलजी
मनुभई शाह
सिद्धार्थ श्रीराम
डॉनल्ड वॉर्म्बियर
राकेश वाधवा

चेयरमैन

कनवल रेखी

प्रेसीडेंट

पार्थ जे शाह

न्यासी समिति

आदित जैन
गुरचरण दास
अनुराधा मंगलपल्ली
दिलीप रंगाचारी
पार्थ जे शाह
सौरभ श्रीवास्तव
ओ पी वैश

सेंटर फॉर सिविल सोसाइटी सीमित सरकार, कानून का शासन और प्रतिस्पर्धी बाजार के संदर्भ में सार्वजनिक नीतियों पर चिंतन करने वाला एक वैचारिक संगठन है।